Q:- युधिष्ठिर के प्रति द्रौपदी की उक्ति का वर्णन करें।

Ans: भारवि का एकमात्र महाकाव्य किरातार्जुनीयम् है जिसे संस्कृत साहित्य की वृहत्त्रयी में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विचारकों का तो यहाँ तक कहना है कि संस्कृत के महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् शीर्षस्थ है जो तत्कालीन महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर अधिक से अधिक खरा उतरता है। अठारह सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग के उत्तरार्द्ध में द्रौपदी की उक्ति की हमें उपलब्धि होती है। वह इस प्रकार है :-

वनेचर द्वारा अपने शत्रु की सफलता का वर्णन सुनकर युधिष्ठिर द्रौपदी के भवन में प्रवेश करते हैं वहाँ युधिष्ठिर अपने अनुजों एवं द्रौपदी के समक्ष दुर्योधन की सफलता का वर्णन करते हैं। द्रौपदी इन बातों को सुनकर क्रोधातिरेक से उत्तेजित हो उठती है वह एक भारतीय नारी है। नारी की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहती किन्तु परिस्थितिवश वह विवश हो जाती है। अपने शत्रु की कार्यसिद्धि को सुनकर तज्जनित अपने मनोविकारों पर नियंत्रण करने में वह बिल्कुल असमर्थ हो जाती है। फलतः वह युधिष्ठिर के क्रोध एवं उद्योग की उद्दीपिका वाणी में कहना प्रारंभ करती है।

तुमलोगों के सदृश महापराक्रमशाली व्यक्तियों के लिए नारीजन से उपदिष्ट कर्तव्य निर्देश वस्तुतः आक्षेप जैसा ही है। तथापि मैं करूँ क्या? नारी के आचार को नष्ट करदेनेवाली दुष्ट मनोव्यथाएँ मुझे बोलने के लिए प्रेरित करती हैं। द्रौपदी की इस उक्ति में तीव्र प्रतिक्रिया की भूमिका स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

वह युधिष्ठिर को लक्ष्य करके कहती है कि इन्द्र के सदृश प्रभावशाली अपने वंश के राजाओं द्वारा चिरकाल तक निरन्तर अनुशासित पृथ्वी को तुमने छोड़ दिया। तुम्हारा यह कार्य मदमत्त हाथी के मालात्याग के सदृश ही है। जो मायावियों के साथ मायावी नहीं बनते, वे मन्द बुद्धि पराजित होते ही हैं। तुमने 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इस नीति का आश्रय नहीं लिया। जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण अनाच्छादित अंगवालों का हनन कर डालते हैं। उसी प्रकार दुष्टात्मा जनता का स्वांग रचाकर निश्छल व्यक्तियों का नाश कर डालते हैं। अनुकूल सहायकों से युक्त, क्षत्रियत्व का अभिमानी, तुम्हारे अतिरिक्त भला कौन राजा कुलीन एवं सुन्दर पत्नी-सदृश लक्ष्मी को स्वयं दूसरे से अपहृत करा सकता है? हे नर श्रेष्ठ! वीर पुरुषों से निन्दित पथ पर तुम भटक रहे हो। तुम्हारे क्रोध को जगाने का मैंने प्रयत्न किया है। पर समझ में नहीं आता कि शुष्क शमी वृक्ष को जिस प्रकार अग्नि भस्मसात् कर देती है वैसे ही उद्दीप्त हुआ यह तुम्हारा क्रोध तुमको भस्म क्यों नहीं कर देता? सफल क्रोधवाले व्यक्ति की आपदा नष्ट हो जाती है। सभी व्यक्ति स्वयं ही उसका आधिपत्य स्वीकार कर लेते हैं। इसके ठीक विपरीत क्रोधरहित व्यक्ति की मैत्री से न तो कुछ बनता है, और न शत्रुता से कुछ बिगड़ता ही है।

रक्तचन्दनावलेप का पात्र यह महारथी भीम, जो पहले रथ में बैठता था, आज धूलिधूसरित गात से पैदल ही पर्वत कन्दराओं में भटकता फिरता है। हे सत्यवादी! भीम की इस दशा को देखकर तुम्हारे मन को कष्ट कैसे नहीं पहुँचता? इन्द्रसदृश अर्जुन जो पहले उत्तर कुरुओं को जीतकर तुम्हें प्रचुरमात्रा में सोना-चाँदी देता था, वही आज तुम्हारे लिए वल्कल वस्त्र लाता है। इस दशा में भी

तुम्हें क्रोध क्यों नहीं होता? जंगल में भ्रमिशयन करने के कारण देह कठोर हो गई है। शरीर चारों ओर बालों से भर गया है। इस प्रकार जंगली हाथियों के सदृश इन नकुल तथा सहदेव को देखते हुए भी तुम अपने सन्तोष तथा नियम का परित्याग क्यों नहीं करते हो? हर व्यक्ति का अपना अपना ढंग होता है। मैं तुम्हारी सुमझ को नहीं जानती। किन्तु तुम्हारी इस आपत्ति को सोच सोचकर मुझे अत्यधिक मानसिक कष्ट होता है।

तुम्हारी वर्तमान स्थिति ऐसी हो गई है कि बहुमूल्य पर्यंक पर सोचकर वैतालिकों द्वारा मांगलिक स्तुतिगानों द्वारा जगाये जाने वाले तुम अब कुशाच्छादित उबड़ खाबड़ पर सोते हो तथा गिदड़ियों के अमांगलिक रुदन से जगाये जाते हो। ब्राह्मणों को भोजनोपरान्त भोजन करने से सुन्दर बना हुआ तुम्हारा यह शरीर जंगली फलों पर आश्रित रहने के कारण आज तुम्हारे यश के साथ ही क्षीण हो रहा है। मणिमय पादपीठ पर स्थित तुम्हारे जिन चरणों को पहले नतमस्तक राजाओं की शिरोमालाओं का पराग रंजित करता था, वे ही तुम्हारे चरण कमल आज तीक्ष्ण कुशाओं से आच्छादित वनभूमि पर टिकते हैं। ऐसी अवस्था शत्रु के कारण है। इसलिए मन को अधिक कष्ट होता है। जो शत्रु को अपना यश नहीं दे डालते उन मानशालियों की तो पराजय भी उत्सव ही होती है। हे महाराज! हम पर कृपा कीजिए। शान्ति की नीति का परित्याग करें प्रसिद्ध क्षात्र तेज को धारण कीजिए। शान्ति की नीति से आभ्यंतर शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि की उपलब्धि किया करते हैं। राजा शान्ति की नीति से राज्य की उपलब्धि कदापि नहीं कर सकते। तेजस्वियों में अग्रगण्य, यशस्वी

तुम्हारे जैसे व्यक्ति यदि इस प्रकार के असह्य तिरस्कार को सहन करते हैं तो हाय! बेचारी स्वाभिमानिता बिना आश्रय के कारण समाप्त हो गई हुआ और यदि निस्तेज हुए तुम इस क्षमा की नीति को ही सुख का उपाय समझते हो तो राजचिह्न रूप इस धनुष को छोड़ दो, जाओ वन को तथा जंगल में बैठे-बैठे हवन करते रहो। शत्रु जब कपट पर उतर आया हो तो अतितेजस्वी तुम्हारे लिए प्रतिज्ञा का पालन करना उपयुक्त नहीं है। यदि यह न कर सको, तो प्रायः विजयेच्छु राजा किसी न किसी बहाने से संधि में दोष निकालकर उसे तोड़ देते हैं। तुम भी वर्तमान स्थिति में ऐसा ही करो अर्थात किसी बहाने से सन्धि तोड़ दो।

संध्या समय पश्चिम सागर में डूबे हुए, उष्णता रहित एवं संदीप्त किरणोंवाले सूर्य को जिस प्रकार प्रातः काल में अंधकार का नाश करके पुनः ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं उसी प्रकार भाग्य के फेरे से आपत्सागर में डूबे हुए आपको भी शत्रु का नाश करके पुनः राज्यलक्ष्मी की उपलब्धि हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युधिष्ठिर को पुनः राज्यप्राप्ति हेतु द्रौपदी ने नानाविध उत्साहवर्द्धक बातों को कहकर मौन धारण कर लिया।

END